ISSN : 2583-2948

क्रूर समय में मानुस जात के पाखंड का सच : अस मानुस की जात

- डॉ. सतीश पांडेय
डीन – भाषा और साहित्य विभाग
सोमाया कॉलेज, मुंबई
फोन – 9820385705
ईमेल – satishpandey.somaiya@gmail.com

अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों और दोहरे आचरण के पाखंड को देखकर एक खदबदाते युवा मन की तीखी अभिव्यक्ति तथा अद्भुत कहन शैली के कारण अनूप मणि त्रिपाठी का पहला ही व्यंग्य संग्रह 'शोरूम में जननायक' बेस्टसेलर रहा। 'अस मानुस की जात' उनका दूसरा व्यंग संग्रह है। इसमें भी समकालीन परिवेश में व्याप्त विद्रूपताओं तथा आज के तथाकथित 'मानुस' के पाखंडपूर्ण आचरण और व्यवहार के दोगलेपन पर सीधा प्रहार किया गया है। ये व्यंग्य-रचनाएँ इतनी तल्ख एवं विदग्धकारी हैं कि पाठक अपने समय के राजनीतिक छल-छद्म के साथ-साथ संवेदनशीलता के पीछे छिपी इस 'मानुस जात' के व्यवहार की अमानवीयता और क्रूरता से न सिर्फ रूबरू होता है बल्कि वह मुट्ठियाँ भींचे किचकिचाता-गुर्राता विचलित हो छटपटाने को विवश हो उठता है। और यह सब बड़े ही सहज, रोचक एवं कथात्मक अंदाज में होता है। व्यंग्यकार जिस तरह वर्तमान जीवन के अंतर्विरोधों और व्यवहार के खोखलेपन का रेशा-रेशा उधेड़ कर सामने रख देता है, उसे देख पाठक तिलमिला उठता है।

अनूप मणि की इन व्यंग्य-रचनाओं का फलक व्यापक अर्थ-संदर्भ लिए हुए है। इनमें जहाँ सत्ताधारियों के चारित्रिक दोहरेपन तथा राजनीति के अपराधीकरण का सच उद्घाटित हुआ है, वहीं राष्ट्रवाद, देशप्रेम, धर्मनिरपेक्षता और विकासवाद की असलियत का पाखंड भी उजागर हुआ है। आम आदमी के प्रति नेताओं की धारणा तथा निजी स्वार्थ में डूबे नेतृत्व की असलियत उद्घाटित करने के माध्यम से वर्तमान राजनीति और बजबजाते लोकतंत्र के यथार्थ को व्यंग्यकार ने सामने लाने का भरपूर प्रयास किया है। साथ ही किसान, मजदूर, चायवाला, सामान्य दुकानदार, ऑटोवाले, स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़ों के प्रति उसकी चिंता भी दिखाई देती है। वह जातिवाद, सांप्रदायिकता, हिंदुत्ववादी ताकतों के उफान तथा सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव आदि पर भी सीधा प्रहार करते हुए उस आम आदमी के प्रति अपनी चिंता प्रकट करता है, जो इस हत्यारे समय में पल-पल छला जा रहा है। इतना ही नहीं, उसके यहाँ 'लोटा और कलश' दो अलग जीवन-स्थितियों की ओर संकेत करते हैं तो 'आलू और टमाटर' दागी जीवन के बदलते मूल्यों को उद्घाटित करते हैं। इसी तरह इमारत के आदमखोर होने के माध्यम से व्यंग्यकार ने इंसानी रक्त-मांस के शोषण पर आधारित विकास की असलियत को भी उजागर किया है। लेखकीय स्वतंत्रता और पालतूपन पर उसकी टिप्पणियाँ व्यापक संदर्भों में जीवन की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हुए आम आदमी के प्रति उसकी चिंता ही उद्घाटित करती हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियाँ, राजनेताओं का भ्रष्ट चरित्र एवं दोहरा आचरण व्यंग्यकारों का प्रिय विषय रहा है। अनूप मणि ने भी छोटी-छोटी घटनाओं एवं प्रसंगों के माध्यम से समकालीन राजनीति की विसंगतियों पर बड़ी ही महीन किंतु तीखी टिप्पणियाँ की हैं। उनके अनुसार इस देश के लोग राजनेताओं से नफ़रत करते हैं और राजनीति से प्यार। (पृष्ठ 11) दद्दा जी ऐसे ही राजनेता हैं, जो देखते ही देखते राजनीति में बहुत गहरे उतर जाते हैं जबकि राजनीति में ऊपर उठने के लिए उन्हें कुछ एक को मौत के घाट भी उतारना पड़ता है। बाहर से नाग पंचमी के दिन नाग देवता को दूध पिलाने का अनुरोध कर रहे सपेरे को जब वे पीटने लगते हैं तो सपेरे का वाक्य 'नाग देवता आए हैं, दर्शन कर लो बेटा' या 'नाग देवता को दूध पिला दे बेटा' दोअर्थी बनकर ऐसे राजनीतिज्ञों की असलियत बखूबी उजागर कर देता है। नेताओं के इस दोहरे चरित्र पर प्रहार करने वाली कई व्यंग्य रचनाएँ हैं, जो आज की बजबजाती राजनीति में नेताओं की हकीकत बयान करती हैं। इनमें 'दलित के हुआँ दलिद्दर', 'सजनवा बैरी हो गए

हमार', 'युद्ध के माहौल में नेता जी के यहाँ गृह युद्ध', 'श्रद्धा का श्राद्ध', 'बाढ़ में हवाई दौरा', 'लोकतंत्र के मनभावन दृश्य', 'प्रतीक्षारत', 'नेपथ्य से झाँकती हुई झांकियाँ', 'आदमी की खुराक' तथा 'मुबारक हो देश साफ हो रहा है' और 'राजा बहोत चिंतित है...' प्रमुख हैं। इन रचनाओं को पढ़कर लोकतंत्र और संविधान के नाम पर प्रतिपल अलोकतांत्रिक गतिविधियों में लिप्त नेतागण और 21वीं सदी के भारत का राजनीतिक परिदृश्य ही नहीं बल्कि आम आदमी की दुर्दशा भी उजागर हो उठती है।

चुनाव लोकतंत्र का महाउत्सव होता है लेकिन आजकल इसे भी डेटा विश्लेषण के आधार पर लड़ा जा रहा है। इसीलिए चुनाव में वोट पाने के तरीके पार्टी का थिंकटैंक या मंडली तय करती है। 'लोकतंत्र के मनभावन दृश्य' में भैया जी का थिंकटैंक इसे एक इवेंट की तरह मानता हैं। इसीलिए वह एक गंदी बस्ती में छोटे बच्चे की नाक पोंछने से दिन के कार्यक्रमों की शुरुआत की योजना बनाता है क्योंकि विरोधी पार्टी के लोग तो पिछवाड़ा धुलवाने से भी परहेज नहीं करते। व्यंग्यकार के अनुसार यह वह बस्ती है, जहाँ विकास की नदियाँ बहते-बहते घुसने से पहले ही हिचकी के साथ दम तोड़ देती हैं। यहाँ भैयाजी के हैंडपंप का पानी पीने का कार्यक्रम भी रखा जाता है क्योंकि इसकी फोटो बहुत अच्छी आएगी। नाक पोंछने की जगह किसी बच्चे को बैठाकर साइकिल या किसी बूढ़े को बैठाकर रिक्शा चलाने का ऑप्शन भी है। भैया जी किसी गरीब के घर खाना खाने का विकल्प भी सुझाते हैं तो मंडली का अगुआ कहता है – 'सर ये इवेंट काफी पुराना हो चुका है। इनफैक्ट बहुत पुराना। आजकल हर पार्टी के लोग यही कर रहे हैं। पब्लिक अब बोर हो चुकी है सर ! उसे अब समथिंग इंटरेस्टिंग, एंटरटेनिंग और समथिंग न्यू चाहिए। (पृष्ठ 80) इसीलिए बाद में भैया जी को लगता है कि नाक पोंछने से सीन बहुत इमोशनल बन पड़ेगा और फोटो तो अच्छी आएगी ही।

कई बार सरकार पर पूँजीपतियों का समर्थक होने का आरोप लगाया जाता है। इसीलिए चुनाव के दौरान इस छवि को तोड़ने और किसानों का हमदर्द बनने के लिए कई उपाय किए जाते हैं। थिंक टैंक भैयाजी के लिए एक और इवेंट रखता है। इस मंडली का अगुआ कहता है – 'सर वीट की क्रॉप्स इस टाइम पर रेडी हैं। आपको किसी खेत में जाकर किसी कटी हुई क्रॉप्स को लेकर बस खड़े हो जाना है। अगर आपका मन करे तो हँसिया लेकर इधर-उधर थ्रिल के लिए चला दीजिएगा।' (पृष्ठ 79)

इसी तरह 'नेपथ्य से झाँकती हुई झाँकियाँ' में भी लोकतंत्र के नाम पर चल रहे ऐसे ही दिखावों भरे कारनामों की झाँकियाँ दिखाई देती हैं। नेताजी की कार में कूड़े बीनने वालों के रक्त से पेट्रोल भरा जाता है। अवचेतन अवस्था में भात के लिए तरसती और भूख से मरती बच्ची की घटना पर उठे हंगामे और विरोध से बचने के लिए आयोग बैठा दिया जाता है, जो बड़ी आसानी से उस बच्ची के पेट से डेढ़ जीबी डेटा मिलने के आधार पर उसे भूख से मरा न मानकर इस पूरी घटना को सरकार के खिलाफ़ एक साज़िश साबित कर देता है। गरीब को इंटरनेट का डेटा नहीं अनाज चाहिए, यह सरकार नहीं समझ पाती। इसी संदर्भ में सरकार पर व्यंग्यकार की एक टिप्पणी महत्वपूर्ण बन जाती है कि 'विज्ञापन के भरोसे कंपनी ही नहीं सरकारें भी चला करती हैं और कमाल यह है कि विज्ञापन भी अपनी जिम्मेदारियों से भागता है और सरकारें भी। (पृष्ठ 93)

गरीबों एवं दलितों के यहाँ खाना खाना लोकतंत्र में नेताओं के लिए लोकप्रियता पाने का एक और दिखावे भरा हथकंडा बन गया है। इसीलिए दलित पत्नी का सीधा-सा सवाल कचोटने लगता है कि 'कल नेता लोग काहे आए थे ! इधर चुनाव भी नहीं !' XXX 'उनको क्या कमी है जो यहाँ मुँह उठाए चले आए। हमें पहिले ही नहीं अँटता है और ऊपर से...' (पृष्ठ 22)

किसान को अन्नदाता कहा जाता है लेकिन जब उसकी फसल का मुआवज़ा एक रुपया दिया जाता है तो इस मुद्दे पर सरकार की बड़ी किरकिरी होती है। इससे बचने के लिए सरकार प्रेस कांफ्रेंस बुलाकर इस बात पर अपनी पीठ थपथपाती है कि कम से कम पिछली सरकार की तरह मुआवजा देने में कोई घोटाला तो नहीं हुआ और पत्रकारों को बढ़िया लंच देकर चुप कराने का प्रयास किया जाता है। इसी तरह पेट्रोल का दाम बढ़ने पर राजा मंत्रीमंडल की बैठक बुलाते हैं। इस मंत्रीमंडल पर लेखक की टिप्पणी है कि 'यह कहने के लिए मंत्रीमंडल था। यहाँ राजा ही सब कुछ था। राजा कहे दिन तो दिन, राजा कहे रात तो रात। राजा कहे विकास तो विकास और राजा कहे विनाश तो विनाश।' (पृष्ठ 138)

ऐसे मंत्रीमंडल के कई सुझाव आते हैं, जो अपने आप में व्यंग्य हैं। मसलन –'तेल के दाम जल्द कम होंगे जैसा बयान एक बार फिर दिया जाए।... अंतरराष्ट्रीय बाजार के हाथों हम मजबूर हैं। अतः जल्द ही राजा विदेश यात्रा पर निकलकर उससे हाथ

 ISSN : 2583-2948

मिलाने जाएँ।... मंत्रीमंडल के किसी मंत्री से किसी धर्म विशेष या व्यक्ति विशेष के बारे में तत्काल विवादित बयान दिलवा दिया जाए। ... तेल के उछाल के बरअक्स किसी नए-पुराने मुद्दे को पुनः उछाला जाए। जैसे गोरक्षा, मूर्ति की स्थापना, पूर्ववर्ती राजा के चरित्र पर लांछन लगाना आदि ...वायु प्रदूषण को लेकर अविलंब नए सर्वे की एक अति भयानक रिपोर्ट जारी की जाए। (पृष्ठ 138)

वस्तुतः इस तरह के सुझावों का उद्देश्य और कुछ नहीं बल्कि मूल मुद्दे से ध्यान भटका कर समय निकालना होता है। मूल मुद्दों से ध्यान हटाने के लिए सरकार कोई नया नारा दे देती है। 'स्वच्छ भारत अभियान' भी ऐसी ही एक महत्वाकांक्षी योजना है, जिसमें नेता लोग स्वच्छता अभियान का फोटो खिंचवाकर स्वयं को धन्य समझते हैं। नेताजी स्वच्छता का महत्व बताते हैं तो एक आम आदमी के सवाल नेताजी के लिए मुश्किलें बढ़ा देते हैं-

'वह सब तो ठीक बाबू साहब मगर हमारे दिन कब बहुरेंगे ?'

'तू देश है क्या !'

'जी बाबू साहब!'

मैंने पूछा... तू देश है या देशवासी !'

देशवासी... बाबू साहब

फिर !

फिर क्या बाबू साहब !

पहले देश फिर देशवासी।

बाबू साहब तब तक तो हम हो जाएँगे स्वर्गवासी। (पृष्ठ 135)

इसी तरह व्यंग्यकार मीडिया के उन कैमरों की भी भरपूर खबर लेता है, जो झाड़ू लगाते या गार्डन में टहलते-टहलते नेताजी को कागज का एक टुकड़ा उठाकर कूड़ेदान में डालते हुए केवल देश को ही नहीं, पूरी दुनिया को दिखा रहा है। लगातार दिखा रहा है। व्यंग्यकार की चिंता उस सामान्य सफाईकर्मी के प्रति है। इसीलिए वह सोचता है कि नेताजी जब कागज का टुकड़ा उठा रहे थे, तभी कोई सीवर में घुस रहा था। कैमरे ने उसे क्यों नहीं दिखाया? कैमरा नेताजी को तो कागज का टुकड़ा उठाते हुए दिखा सकता है मगर सीवर में दम घुटने से मरे मज़दूर को नहीं दिखाता। इसीलिए उसकी बेबाक टिप्पणी है कि 'कैमरे कुछ खास जगहों पर केंद्रित होते जा रहे हैं और आत्मकेंद्रित भी। उन्हें चिंतन की जरूरत है। कैमरे कोरस-सा एक ही राग गाने लगे हैं। (पृष्ठ 115) कैमरों का यह कोरस-गान आज की मीडिया के वास्तविक चरित्र को उद्घाटित करता है.

नेताओं के चरित्र में संवेदनशीलता के पीछे छिपी उनकी क्रूरता और दोगलेपन को 'श्रद्धा का श्राद्ध' और 'बाढ़ में हवाई दौरा' जैसे निबंधों में देखा जा सकता है। पुष्प अर्पित कर श्रद्धांजलि देते समय नेताजी का फोकस दिवंगत की तस्वीर पर कम, कैमरे की ओर देखकर अपनी तस्वीर खिंचवाने पर ज़्यादा होता है। आज लोग अपनी संवेदना प्रकट करने में भी नफा- नुकसान देख लेते हैं। लेखक के अनुसार एक शोक सभा में एक अति शोकाकुल प्रगतिशील महानुभाव अपना शोक संदेश मोबाइल पर रिकॉर्ड कर भेज देते हैं क्योंकि वहाँ आते तो समय और पैसा दोनों खर्च होते। श्रद्धांजलियों की वैरायटी पर लेखक का कटाक्ष आज के समाज में संवेदनशीलता के पीछे छिपे काइयाँपन और व्यवहार के दोगलेपन की ओर ही संकेत करता है। उसके अनुसार 'जिसने कभी भाव नहीं दिया, उसने वहाँ भावभीनी श्रद्धांजलि दी। जो अनादर करते रहे, उनकी श्रद्धांजलि सादर थी। जिन्होंने उन्हें रुलाया, उन्होंने अश्रुपूरित श्रद्धांजलि पेश की। उनकी और उनके कारनामों की जो अवहेलना करते रहे, उन्होंने सादर श्रद्धांजलि प्रकट की। जिन्होंने उनके लिए कलह बोए, उन्होंने आँख बंद कर बहुत ही शांतिप्रिय ढंग से ओम शांति कहा। (पृष्ठ 55)

यह नेताओं की संवेदनहीनता की पराकाष्ठा ही है कि बाढ़ पीड़ितों की ज़मीनी हकीकत जानने के लिए नेताजी हवाई सर्वेक्षण करते हैं। चाहते तो टाल सकते थे मगर हवाखोरी का अवसर कौन जाने देता। अतः नेताजी इस गरीब देश में हवाई दौरा करने की रस्म शुरू करने वाले को मन ही मन नमन करते हुए मुँह लटका लेते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि बगल में बैठा फोटोग्राफर उनकी फोटो उतार रहा है। कहीं जरा-सी भी कुछ ऊँच-नीच हुई तो अपोजिशन को बैठे-बिठाए एक मुद्दा मिल जाएगा। व्यंग्यकार के अनुसार 'नेता को मुँह लटकाना है और ऐसे लटकाना है कि कम से कम इतना तो हो कि कल जब अखबार में लोग उसे देखें (बाढ़

 ISSN : 2583-2948

पीड़ित नहीं) तो बाढ़ की विकरालता से ज्यादा त्रासद उसका चेहरा दिखे। लोगों को पता चलना चाहिए कि बाढ़ प्रभावित क्षेत्र को देखने के बाद नेता जी बहुत प्रभावित हुए। (पृष्ठ 57)

भारतीय राजनीति में आगे बढ़ने के लिए अवसर का लाभ उठाना जरूरी होता है। इसे ही व्यंग्यकार ने लोटा उठाना और कलश थामना कहा है। पहले किसी न किसी का लोटा उठाने वाला उस व्यक्ति के कलश थामने का दावेदार बन जाता है। लोटा उठाने की भी एक सभ्यता और संस्कृति होती है। लोटा उठाया ही नहीं जाता बल्कि श्रद्धा की राख से चमकाया भी जाता है। सफल लोग लोटे को स्टोर रूम में रख देते हैं और कलश की राख प्रवाहित कर उसे ड्राइंग रूम में रखते हैं। सफल राजनीति से जुड़ी इस समूची संस्कृति पर व्यंग्यकार की तल्ख टिप्पणी है – 'सोचता हूँ गणतंत्र की झाँकी में लोटे और कलश की एक झाँकी हर बार जरूर निकलनी चाहिए। लोटा पीतल का और कलश सोने का होना चाहिए। आम आदमी लोटा उठाए है, जो भरा है मगर पानी से नहीं, उसके आँसुओं से और नेता कलश थामे हैं, जिसके अंदर राख है। हाँ, मगर दंगे में जली हुई बस्तियों की राख। (पृष्ठ 83)

विकास आज की सरकारों का प्रमुख नारा रहा है और विकास के लिए चाहिए विदेशी निवेश। इसके लिए इन्वेस्टर मीट यानी निवेशक सम्मेलन होते हैं। बड़े धूमधाम से उनका स्वागत होता है लेकिन अपनी छवि साफ-सुथरी दिखाने के प्रयास में चाय का ठेला लगाने वाले को भगा दिया जाता है। इसे विकास के लिए कुर्बानी देने का नाम दिया जाता है। चाय वाले का एक प्रश्न इस व्यवस्था की सारी पोल खोल देता है – 'बाबूजी, एक चाय वाला प्रधानमंत्री बन सकता है मगर एक चाय वाला निर्भय होकर ठेला नहीं लगा सकता। (पृष्ठ 41)

चुनाव जीतने के बाद नेतागण आम आदमी को भूल जाते हैं। खोजने पर भी नहीं मिलते। 'सजनवा बैरी हो गए हमार' में इसी जनप्रतिनिधि यानी 'सजनवा' की खोज में कुछ व्याकुल आत्माएँ आती हैं। बकौल व्यंग्यकार 'पिछले चुनाव में कहा था कि सुख की सेज देंगे मगर सेज न मिलकर सोज (गम) मिला।' उनके आक्रोश को व्यक्त करते हुए व्यंग्यकार लिखता है – 'सजनवा जो कि अभी भी सजे-धजे लकदक हैं और वे हैं कि सुहागन होकर भी विधवा-सी लगने लगी हैं। जबकि गाँठ जोड़े ज्यादा दिन नहीं हुए ! तब मन में एक हूक उठती है कि इस बार... अबकी बार सजनवा आए, हाथ फैलाए तो वे उनके हाथ की लकीरें न देख कर उनको आँख दिखाएँगी, आँख ! हाँ नहीं तो ! अब उसे सजनवा के साथ करमवा भी बैरी लगने लगता है।' (पृष्ठ 35) ऐसा नहीं कि इन लोगों का अपने सजनवा से संपर्क पूरी तरह से टूट गया हो। अतः वे राजधानी में सजनवा के दर्शन के लिए राजधानी आ जाते हैं। वहाँ उनको सजनवा तो नहीं मिलते लेकिन फुटपाथ पर बैठे ज्योतिषी मिलते हैं। व्यंग्यकार खुद से प्रश्न पूछता है कि 'क्या आज भी सिस्टम से ज्यादा भरोसा लोगों का ज्योतिष में है। इतने बरसों की प्रौढ़ हुई डेमोक्रेसी की इस शानदार उपलब्धि पर हम ताली बजा सकते हैं।

राजनीतिक छल-छद्म में लिप्त लोग देशप्रेम, राष्ट्रीयता, जाति-धर्म और सांप्रदायिकता आदि को अपने स्वार्थ के लिए एक हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं। व्यंग्यकार अनूप मणि ने इस पाखंड को भी अपनी कई व्यंग्य रचनाओं में उद्घाटित किया है। विधर्मी के 'नोश फरमाएँ' कहने पर धर्म-परायण व्यक्ति के रोएँ-रोएँ सुलग उठते हैं लेकिन उसी के हाथ से रिश्वत लेने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। उनके सपने में वह विधर्मी चेहरा कहता है – 'क्यों धर्म-परायण... विधर्मी के हाथ का पानी तक नहीं पियोगे मगर घूस... नहीं, नहीं उत्कोच लप्प से खा लोगे।' (पृष्ठ 17)

इसी तरह तथाकथित देश-प्रेम पर कटाक्ष करते हुए व्यंग्यकार लिखता है – 'इस देश के लोग विकट देश प्रेमी थे। एक कोटि उनकी थी, जो अपने पड़ोसी मुल्क से घृणा करते थे और उसे मिटाने के लिए हर क्षण लो वेस्ट जींस पहनने के बावजूद कटिबद्ध रहते थे। दूसरी कोटि वह थी जो किसी धर्म विशेष से नफ़रत करते थे। तीसरी कोटि भी थी, जो इन दोनों कोटि के देशभक्तों से नफ़रत करती थी। कुल मिलाकर देश देश-भक्तों से ठसाठस भरा हुआ था और उसे प्रेम करने के लिए किसी से नफ़रत करना जरूरी था। (पृष्ठ 11)

इसी सोच के कारण हमारे देश में छोटी-छोटी बातों पर सांप्रदायिक दंगे शुरू हो जाते हैं। इस मानसिकता को 'आजकल हवा बहुत खराब है' में साफ़ उजागर किया गया है, जहाँ हवा खराब होने के नाम पर कुछ छतों पर ईंट-गुम्मे जमा हो जाते हैं तो कुछ छतों पर छोटे-बड़े डंडे या पेट्रोल- किरोसीन से भरी शीशियाँ। ऐसे में अब्दुल और आनंद सुबह के निकले जब शाम तक घर नहीं पहुँचते तो दोनों पक्ष के

लोग उनको ढूँढने निकल पड़ते हैं। इस क्रम में एक पक्ष दूसरे से टकराता है तो उसकी आँखों में गुस्से और अविश्वास का तूफ़ान उतर आता है। पता चलता है कि दोनों बच्चे कब्रिस्तान के पास हैं। दोनों धाराएँ बड़े वेग से अपने-अपने रंग और नारों के साथ पहुँचकर देखती हैं कि दोनों बच्चे एक पौधा लगा रहे थे और कह रहे थे कि 'अब हवा साफ़ होगी। हमने पेड़ जो लगाया है।' इस तरह लेखक अफ़वाहों के आधार पर उपजी सांप्रदायिकता के औचित्य पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करते हुए सांप्रदायिक सौहार्द की पुख्ता ज़मीन तैयार करता है।

अनूप मणि त्रिपाठी ने कहानीपन और चुटीले संवादों के साथ-साथ व्यंग्य तो अनेक रचनाओं में किया है लेकिन यह शैली 'बड़ा आदमी', 'आदमी की खुराक' और 'मम्मी डैडी का टॉय' में विशेष रूप से दिखाई देती है। छीजते मानवीय मूल्यों के इस संवेदनहीन समय में छल-कपट जीवन में सफलता का मूल मंत्र बन गया है, जबकि मित्रता आदि मानवीय भावनाओं को महत्व देना मूर्खता का प्रमाण मान लिया जाता हैं। नेताजी जैसे 'बड़े आदमी' अपने सहपाठी को दिखाकर बेटे से यह कहते हैं कि 'जो ठीक से चूना नहीं लगा पाता, वह पान की दुकान ही लगाता है और जो ठीक से चूना लगाना जानते हैं, वे सड़क, पुल वगैरह बनाते हैं... सरकार भी। (पृष्ठ 132) यह है उस बड़े आदमी के बड़े होने का आधार जबकि उन्हें पता होता है कि पान की दुकान वाला उनके पान के पैसे नहीं लेगा क्योंकि अभी भी वह उन्हें अपना मित्र मानता है।

इसी तरह 'मम्मी डैडी का टॉय' खत्म होते बचपन और कैरियरबाज़ संस्कृति की बखिया उधेड़ती रचना है। पाँच साल का बच्चा, जिसने तितली भी टीवी में ही देखी है और जो नहीं जानता कि लोरी क्या होती है, वह गाने की 'रियलिटी शो में अपने परफॉर्मेंस को लेकर बिग ट्रबल में' अनुभव करता है। उसे अपने लिए दुआ नहीं वोट चाहिए, जिससे वह उस रियलिटी शो का विनर बन सके।

इन राजनीतिक-सामाजिक विडंबनाओं के अतिरिक्त साहित्य जगत में व्याप्त गुटबाजी एवं तिकड़म पर भी इन्होंने तीखा व्यंग्य-प्रहार किया है। इनमें लेखन की गुणवत्ता को लेकर संशय हो, हिंदी के लेखक के अकिंचन होते जाने का मुद्दा हो, लिटरेचर फेस्टिवल का आयोजन हो या पुरस्कार पाने की तिकड़म, इन सभी विषयों से जुड़ी विसंगतियों पर इन्होंने तीखा प्रहार किया है। 'मेरे समक्ष कुत्ता और कुत्ते के समक्ष मैं' रचना में स्वतंत्र लेखक बनाम विचारधारा या सत्ता के पालतू लेखकों के बीच की विसंगतियों पर कुत्ते के माध्यम से तीखा प्रहार किया गया है – 'मालिक के इशारे पर भौंकना पड़ता है तो वही मालिक तेरे लिए दूसरों से भिड़ भी तो जाता है। ... मालिक अपने पालतू को लड़वाता है तो उसके लिए लड़ता भी है... नासमझ देख, चाहे तो साहित्य की दुनिया हो या राजनीति की सब जगह यही हो रहा है।' (पृष्ठ 72) लेखकीय स्वाभिमान को गिरवी रखने वाले पालतू लेखकों के मूल्य बदल रहे हैं। आधुनिक इस दुम हिलाने को हाँ में हाँ मिलाना कहते हैं और अत्याधुनिकतावादी इसे विनम्रता और अनुशासन कहते हैं।'

इतने व्यापक फलक पर वर्तमान समय की लगभग हर विसंगति पर किया गया लेखकीय प्रहार उसकी आम आदमी के जीवन की बेहतरी के लिए चिंता का परिणाम है। इसे अधिक प्रकट रूप में 'आम और आम' व्यंग-रचना में देखा जा सकता है। लेखक की दृष्टि में आम आदमी आम की तरह सबके जीवन में रस घोलता है। अगर यह न हो तो राजनीति नीरस हो जाए। संसद खामोश हो जाए ! नारे न गढ़े जाएँ ! रैली व रेला न हो !... विकास का पत्ता किसके लिए डोले! योजनाओं के अंकुर फिर किसके नाम से फूटें ! (पृष्ठ 63) यह आम इंसान चुनाव जैसे खास मौकों पर खास हो जाता है लेकिन अपने चूसे जाने को उसने अपनी नियति मान ली है। वहीं खास लोग इनको चूसने को अपनी बपौती समझ बैठे हैं। इस संदर्भ में व्यंग्यकार की निष्कर्षात्मक टिप्पणी है कि 'सच है आम आदमी का जीवन बदला है। पहले उसको चूसा जाता था। अब उसकी चटनी बन रही है।' (पृष्ठ 64)

इस तरह 'अस मानुस की जात' में अनूप मणि त्रिपाठी तथाकथित 'मानुस जात' के व्यवहार की अमानवीयता, क्रूरता और पाखंड से न सिर्फ रूबरू कराते हैं बल्कि वर्तमान जीवन में व्याप्त लगभग हर क्षेत्र की विद्रूपताओं-विडंबनाओं पर प्रहार कर आम आदमी की नियति बदलना चाहते हैं। इन व्यंग्य-रचनाओं का शिल्प-विधान जिस तरह कथा-रस, संवादात्मकता, चुटीलेपन और रोचक-प्रवाही भाषा से आपूर्ण है, उसे सीधे-सीधे व्यंग्य निबंध कहना इनके साथ अन्याय होगा। कहानी और निबंध की आपसी ओवरलैपिंग कराकर इन रचनाओं को दोनों विधाओं के समन्वित रूप वाला एक अलग विधा-रूप प्रदान करने में लेखक सफल हुआ है। अपनी पठनीयता और व्यंग प्रहारक क्षमता के कारण अनूप मणि के ये व्यंग्य अपनी अलग पहचान स्थापित करने में सफल हैं।

*****